वर्तमान भौतिकवादी तथा वैज्ञानिक परिवेश में मोक्ष–अवधारणा की जीवन में उपयोगिता : एक दार्शनिक विश्लेषण

निशी कुमारी*

वर्तमान वैज्ञानिक तथा आधुनिक परिवेश में मोक्ष की क्या उपयोगिता है और कैसे यह जीवन के चरम पुरुषार्थ के रुप में प्राचीन काल से ही स्वीकारा जाता रहा है यह बड़ा ही प्रासंगिक प्रश्न है। मोक्ष की अवधारणा सभी भारतीय धर्मों में पायी जाती है चाहे वह वैदिक हो या अवैदिक। करीब–करीब सभी भारतीय दाशनिकों का यह मत है कि मोक्ष का अर्थ है परम आनन्द की अवस्था और प्रत्येक प्रकार के द्वैत जैसे सुख–दुःख हानि–लाभ, मान–अपमान, जीवन–मृत्यु आदि में सम–भाव में अवस्थित रहना। इस अवस्था की प्राप्ति के पश्चात् एक व्यक्ति सभी प्रकार के मानसिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। उपनिषद् में मोक्ष की इस अवस्था को 'सत्यम्, ज्ञानम्, आनन्दम्' कह कर परिभाषित किया गया है। पुनः गीता में भी कर्म–मार्ग, ज्ञान–मार्ग तथा भक्ति–मार्ग के आधार पर मोक्ष–प्राप्ति की चर्चा की गयी है। कैसे हम पुनः आज के आधुनिक परिवेश में मोक्ष की प्राप्ति तथा इसकी उपयोगिता का वर्णन संक्षिप्त रुप में प्रस्तुत कर लोगों के समक्ष रख सकें जिससे इसकी सामाजिक उपादेयता और उपयोगिता पुनः प्रमाणित हो सके, हमारे इस लेख का यही मुख्य उद्देश्य है।

इस संसार तथा जीवन को दुःखमय मानने के कारण दार्शनिकों के समक्ष मोक्ष के सन्दर्भ में यह ज्वलन्त प्रश्न उठा कि इस दुःखपूर्ण सांसारिक प्रवाह या चौरासी लाख योनियों में भ्रमण से कैसे छुटकारा पाया जाय? इस प्रश्न के समाधान के क्रम में ही दार्शनिकों ने कर्म, ज्ञान, भक्ति तथा योग के आधार पर जीवन केबंधनों से छूटने के विभिन्न साधनों की चर्चा की है। हम पाते हैं कि यद्यपि भारतीय चिंतन में मुक्ति या मोक्ष के स्वरुप को लेकर मतभेद है फिर भी मोक्ष को ही मानव के सर्वोच्च लक्ष्य के रुप में स्वीकारा गया है। मोक्ष की अवधारणा के संदर्भ में निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं। 1. मोक्ष की अवधारणा का क्या अर्थ है? 2. कर्म, ज्ञान, भक्ति तथा योग इनमें से कौन मोक्ष की प्राप्ति के लिए पर्याप्त है। ऊपर मे वर्णित दो या तीन या सभी का समन्वय उपयुक्त है? पुनः हम यह भी पाते हैं कि मोक्ष के स्वरुप को लेकर अन्ततः दार्शनिकों ने सामान्य रुप से यह स्वीकारा है कि जीवन रहते हुए यदि हम सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो सकें तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। वर्तमान आधुनिक परिवेश में मोक्ष–प्राप्ति के व्यावहारिक मार्ग को लोगों के समक्ष कैसे रख सकें हमारा यह अभिप्राय ही वर्तमान लेख के महत्व एवं प्रासंगिकता को निर्धारित करता है।

***शोध छात्रा, स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया**

भारतीय दर्शन में मोक्ष को चरम लक्ष्य माना गया है। मोक्ष की यहाँ प्रधानता होने के कारण ही इस दर्शन को 'मोक्षदर्शन' भी कहा जाता है। भारतीय विचारकों के अनुसार चारों पुरुषार्थों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) में मोक्ष को ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोच्च माना गया है। पुनः बौद्ध दार्शनिक को 'निर्वाण' के नाम से पुकारते हैं। इस दर्शन में निर्वाण के कई अर्थ बताए गए हैं। 'निर्वाण' का शाब्दिक अर्थ है 'बुझ जाना'। दुःखरुपी अग्नि का बुझ जाना ही निर्वाण है। कुछ बौद्ध विचारकों ने निर्वाण को आनंदयुक्त अवस्था माना है। नागसेन के शब्दों में, "निर्वाण समुद्र की भाँति गहरा, पर्वत की भाँति ऊँचा और मधु की भाँति मधुर है।" यहाँ निर्वाण को दुःखरहित अवस्था के रुप में ही स्वीकार किया गया है। इसकी प्राप्ति के लिए महात्मा बुद्ध ने 'अष्टांग मार्ग' का उपदेश दिया है। इस मार्ग का अनुसरण करके व्यक्ति इसी जीवन में निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। पुनः जैनदर्शन में अज्ञान को बंधन का मुख्य कारण माना गया है। अज्ञान के कारण ही एक व्यक्ति बंधनग्रस्त होकर दुःख झेलता है। बंधन का नष्ट होना ही मोक्ष कहलाता है। इस अवस्था में व्यक्ति जन्म–मरण के संकट से मुक्त होकर दुःखों से पूर्ण छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

पुनः सांख्यदर्शन के अनुसार पुरुष प्रकृति से सर्वथा भिन्न है। अज्ञानवश जब पुरुष अपने को प्रकृति से अभिन्न समझने लगता है, तब वह बंधन में फंस जाता है और उसे अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं। यदि पुरुष अपने को प्रकृति से भिन्न समझ ले, तो फिर वह बंधन काटकर दुःखों से पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसके लिए 'विवेकज्ञान' की आवश्यकता पड़ती है। मोक्ष की अवस्था में व्यक्ति त्रिविध दुःखों (आध्यात्मिक, अधिभौतिक एवं आधिदैविक दुःखों) से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। सांख्यदर्शन में मोक्ष दो प्रकार के बताए गए हैं–जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति। शरीर धारण करते हुए मोक्ष प्राप्त करना 'जीवनमुक्ति' है। मृत्यु के बाद प्राप्त मोक्ष 'विदेहमुक्ति' है। पुनः योगदर्शन भी सांख्यदर्शन की भाँति घोषित करता है कि जब अज्ञानवश पुरुष प्रकृति एवं उसके विकारों से अपने को अभिन्न मान लेता है तब वह बंधनग्रस्त होकर विविध कष्ट झेलता है। इस दर्शन में मोक्षप्राप्ति के लिए 'योग'

पर विशेष जोर दिया गया है। यहाँ योग के आठ अंगों या साधनों का वर्णन हुआ है। इन्हें 'योगंग– या 'अष्टांग' योग कहा जाता है। इनकी साधना करने से मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

न्यायदर्शन के अनुसार आत्मा शरीर, मन एवं इंद्रियों से सर्वथा भिन्न है। अज्ञान के कारण जब आत्मा शरीर, मन एवं इंद्रियों को अपना अंग मान लेती है, तब उसे दुःख झेलना पड़ता है। यही बंधन की अवस्था है। इस अवस्था में आत्मा को जन्म–मरण के चक्कर में फँसना पड़ता है। आत्मा जब अपने को शरीर, मन एवं इंद्रियों के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त कर देती है, तब उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। नैयायिक मोक्ष को 'अपवर्ग' के नाम से भी पुकारते हैं। अपवर्ग में पुनर्जन्म का अंत हो जाता है और व्यक्ति सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है। अपवर्ग की प्राप्ति के लिए न्यायदर्शन में श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि उपायों पर जोर दिया गया है। पुनः न्याय और वैशेषिक दर्शन दोनों का मूल कारण अज्ञान एवं विवेक को मोक्ष का साधन बताते हैं। दोनों ही मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं। दोनों के अनुसार ही मोक्ष दुःखरहित अवस्था का नाम है। वास्तविक एवं अवास्तविक का अंतर समझ लेने पर ही व्यक्ति बंधन से मुक्त हो सकता है ओर यह तत्त्वज्ञान द्वारा ही संभव है।

पुनः मीमांसादर्शन में प्राचीन मीमांसक स्वर्ग को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानते थे। किंतु, बाद के मीमांसक मोक्ष को ही चरम लक्ष्य या निःश्रेयस् मानने लगे। मीमांसादर्शन में कर्म को अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया गया है। अशुभ कार्य करने से व्यक्ति बंधनग्रस्त होता है। सुख की प्राप्ति या अन्य इच्छाओं की तृप्ति के लिए किए गए कर्म अशुभ या अनुचित कहे जाते हैं। इन कर्मों को त्यागकर निष्काम कर्म करके ही व्यक्ति बंधन से मुक्त हो सकता है। सुख के साथ दुःख अनिवार्य रुप में मिला रहता है। यही कारण है कि सुख के लिए किए गए कर्म दुःख उत्पन्न करते हैं। आत्मज्ञान एवं निष्काम कर्म धीरे–धीरे संचित संस्कारों को नष्ट करके व्यक्ति को पुनर्जनम से छुटकारा दिलाते हैं।

शंकर के अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा और ब्रह्म दोनों वस्तुतः एक ही है। अज्ञानवश व्यक्ति आत्मा को शरीर या इंद्रिय से अभिन्न मान लेता है और फलस्वरुप बंधनग्रस्त होता है। आत्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है। जब आत्मा अपने को ब्रह्म के रुप में जान लेती है तब वह बंधन से मुक्त हो जाती है। शंकर के अनुसार आत्मा सदैव मुक्त रहती है। अज्ञान के कारण ही वह अपना वास्तविक स्वरूप भूलकर विविध दुःखों का शिकार होती है। मोक्ष की प्राप्ति पहले से प्राप्त की हुई वस्तु को पुनः प्राप्ति मात्र है। यहाँ किसी नई वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। अपने भूले हुए स्वरूप को पुनः प्राप्त कर लेना ही मोक्ष प्राप्ति है। यहाँ मोक्ष को दो प्रकार का माना गया

है–जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति। शंकर इन दोनों के समर्थक हैं। शंकर मोक्ष के दोनों पहलुओं (भावात्मक और निषेधात्मक) पर जोर देते हैं। भावात्मक रुप में मोक्ष आनंद की अवस्था है और निषेधात्म्क रुप में यह दुःखरहित अवस्था है। मोक्ष अकर्मण्यता एवं निष्क्रियता की अवस्था नहीं है। मुक्त जीव को लोक–कल्याण के लिए निःस्वार्थ भाव से सदैव कर्म करते रहना पड़ता है

इस संदर्भ में हम पाते हैं कि रामानुज विशिष्टाद्वैत वाद के प्रवर्तक हैं और वह शंकर के इस मत से सहमत नहीं है कि मोक्ष की अवस्था में आत्मा ब्रह्म में एकाकार या विलीन हो जाती है। मुक्त जीव ब्रह्म से प्रृथक अपनी सत्ता कायम रखता है। वह ब्रह्म या ईश्वर की सतत् उपासना एवं भक्ति में लगा रहता है। यहाँ मोक्ष के भावात्मक स्वरूप पर जोर दिया गया है। सतत् उपासना एवं भक्ति द्वारा जीव ईश्वर को प्रसन्न रखकर असीम ब्रह्मानंद प्राप्त करता है। इस प्रकार, रामानुज शंकर की भाँति ही मोक्ष को दुःखरहित अवस्था के साथ–साथ आनंदमय अवस्था भी घोषित करते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि मनुष्य इस घरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और इसकी संभावनाएँ असीम हैं। महाभारत के शांतिपर्व में महर्षि वेदव्यास मानव को इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी घोषित करते है। सनातन धर्म एवं संस्कृति में स्पष्ट घोषित किया गया है कि जीवो ब्रह्मैव नापरः अर्थात जीव ब्रह्म की परमसत्ता के समकक्ष है। इसका कारण इस मानव देह में उसके अभ्युदय एवं निःश्रेयस की उन समस्त संभावनाओं का होना है, जिनके आधार पर उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं कहा जा सकता है। मनुष्य जीवन के इस महत्व को देखते हुए ही शास्त्रों में पग–पग पर इस बहुमूल्य जीवन को पूर्ण सजगता एवं आपार धैर्यनिष्ठा के साथ सजाने एवं संवारने के लिए कहा गया है। शास्त्रों की इन घोषणाओं के बावजूद देखा जाए तो इस संसार में अधिकांश व्यक्तियों की जीवन भर का पुरूषार्थ देह मन के बंधनों के परे नहीं जा पाता। जो मुक्त होने का प्रयास करता है। वह मोक्ष प्राप्त करता हुआ पुरूषार्थ चतुष्टय की सिद्धि करता है, जो क्रमशः है – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। ये ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य और मुख्य उद्देश्य माना गया है। धर्म और मोक्ष के लिए प्रयत्नशील न होकर केवल अर्थ और काम की चिंता करना सम्पूर्ण पुरूषार्थों से हाथ धो बैठना है। भारतीय संस्कृति ग्रहस्थ जीवन जीते हुए भी इन पुरूषार्थों के संपादन की व्यवहारिक नीति सुझाती है और जीवन के सर्वांगीण उत्कर्ष एवं जीवन सिद्धि का मार्ग दिखानी है।

वस्तुतः मोक्ष की प्राप्ति के क्रम में एक व्यक्ति के आचार–विचार और क्रिया–कलाप पूर्णरूपेण परिमार्जित हो जाते हैं। इससे मनुष्य के आत्मिक जीवन के विकास के साथ–साथ मानसिक विकास और भौतिक समृद्धि भी होती है। हम

यह कह सकते हैं कि मोक्ष की अवस्था में एक व्यक्ति का जीवन परिमार्जित परिष्कृत और सुव्यवस्थित हो जाता है और वह विभिन्न प्रकार के संस्कारों से युक्त हो जाता है संस्कार वह है जिससे कोई पदार्थ एवं व्यक्ति किसी कार्य के योग्य होता है। अर्थात संस्कार वे क्रियायें एवं रीतियाँ हैं जो मनुष्य को योग्यता प्रदान करती है। आज के भौतिकवादी परिवेश में संस्कार और मोक्ष मार्ग की महत्ता और भी बढ़ जाती है। अतः आज के आधुनिक परिदृश्य को देखते हुए ऐसे विषयों पर चिन्तन एवं समाज में इनका विस्तारण अत्यन्त अपेक्षित है।

पुनः भारतीय नीतिदर्शन में तीन प्रकार के कर्मों की चर्चा मिलती है–नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म और काम्य, कर्म। नित्य कर्म वे हैं, जिन्हें प्रतिदिन हमें जीवन–निर्वाह के लिए अनिवार्य रुप करना पड़ता है। नैमित्तिक कर्म वे है, जिन्हें विशेष अवसरों, अवस्थाओं या परिस्थितियों में करना पड़ता है। ये कर्म वैयक्तिक और सामाजिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस के लिए परम आवश्यक है। तीसरे प्रकार के काम्य–कर्म वे हैं, जो किसी फल की कामना की पूर्ति के लिए किए जाते हैं। इन क्रियाओं के उचित–अनुचित फलों को हमें भुगतना भी पड़ता है। यही कर्म वास्तव में हमें जीवन के बंधनों से बाँधते हैं। इसलिए कर्म–फल के नियम से छुटकारा पाने के लिए हमें काम्य कर्मों का ही पूर्णतया परित्याग करना पड़ेगा। नित्य और नैमित्तिक कर्म के परित्याग की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसके संपादन से हमारा चित्त शुद्ध होता है, बुद्धि निर्मल होती है और आत्मज्ञान में भी सहायता मिलती है। गीता में इसे बड़े ही स्पष्ट रुप से कहा गया है कि कर्मों को न करने से निष्कामता को प्राप्त नहीं किया जा सकता और न ही कर्मों को त्याग देने से सिद्धि की प्राप्ति की जा सकती है, क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण–मात्र भी बिना कोई कर्म किए नहीं रहता। निःसंदेह सब लोग प्रकृति से उत्पन्न हुए इन गुणों द्वारा परवश होकर कर्म करते हैं। यहाँ तक कि जो मूढ़–बुद्धि पुरुष हठपूर्वक कर्मेन्द्रियों को रोककर इन्द्रियों के भोगों की मन में कल्पना करता है वह मिथ्याचारी कहलाता है। इसलिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को परामर्श दिया कि तुम उचित कर्मों को करो; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्म न करने से शरीर–धारण भी न हो सकेगा। इस प्रकार योगवशिष्ठ और गीता दोनों ही ग्रंथों में यह बतलाया गया है कि मनुष्य को कर्मों का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए।

इसी क्रम में स्वामी विवेकानन्द का मोक्ष के संदर्भ में यह दृढ़ विचार है कि निष्काम भाव से किया गया दुनिया का प्रत्येक कर्म पवित्र है और कर्तव्यनिष्ठता भगवतपूजा का सर्वोत्कृष्ट रुप है। उनका प्रबल विचार है कि निष्काम और अनासक्त होकर कर्म करने में हमें परम आनन्द तथा मुक्ति और मोक्ष की भी प्राप्ति

तक हो जाती है। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग के इसी रहस्य की शिक्षा दी है। इस प्रकार निष्कर्षतः हम पाते हैं कि ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग तथा कर्मयोग ये तीनों मार्ग एक–दूसरे के पूरक हैं और मोक्ष की प्राप्ति में एक–दूसरे के लिए सहायक सिद्ध होते हैं।

संदर्भ

1. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/4
2. वृहदारण्यक उपनिषद, 3–7.8
3. केन उपनिषद्, 2.2
4. भारतीय दर्शन– बसंत कुमार लाल, भारती भवन, पटना, 1960
5. भारतीय दर्शन की रुपरेखा–हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, 1991

****